इकाई 10 उपन्यास का रूपांतरण

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 उपन्यास की संरचना

10.2.1 उपन्यास के तत्व

10.3 उपन्यास में कथा

10.4 उपन्यास के रूपांतरण की प्रक्रिया

10.5 सारांश

10.6 अभ्यास के लिए

10.7 उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप जानेंगे कि :

- उपन्यास में घटनाओं के वर्णन की संरचना क्या होती है?
- उपन्यास के रूपांतरण व कहानी के रूपांतरण में क्या भिन्नता है?
- उपन्यास के विवरणात्मक अंश को कैसे दृश्यता प्रदान की जाती है?
- कहानी के रंगमंच की शैली में उपन्यास के रूपांतरण की प्रक्रिया क्या है?
- उपन्यास को नाट्यालेख में कैसे रूपांतरित किया जाना चाहिए?

10.1 प्रस्तावना

पिछले अध्याय में हमने कहानी के रूपांतरण पर विस्तार से चर्चा की। साहित्य की विधा कहानी की ओर रंगमंच के रुझान के कारण पर भी हमने चर्चा की। इस अध्याय में हम उपन्यास के रंगमंचीय रूपांतरण पर दृष्टिपात करेंगे। छठे, सातवें और आठवें दशक में रंगमंच में एक नए आंदोलन ने जन्म लिया जिसके केंद्र में साहित्य की अन्य विधाओं में रंगमंच के लिए कथ्य की खोज था। कहानी के साथ ही उपन्यास विधा ने भी रंगमंच को विस्तार दिया। उपन्यासों के नाट्य रूपांतरण और उनकी प्रस्तुति के विषय में नवीन दृष्टि के साथ सोचा जाने लगा। इसी के साथ यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि अंततः उपन्यास जैसे विस्तृत पटल से रंगमंच को क्या मिला? उपन्यास की संरचना में रंगमंच कहाँ है? कहीं उपन्यास की मौलिकता और कथा के पूर्ण विस्तार में निर्देशक के लिए वे सभी सूचनाएँ तो मौजूद नहीं जो किसी नाट्यालेख के अध्ययन के दौरान निर्देशक खोजता है। मसलन – चरित्र का पूरा ब्यौरा, लोकेशन का विवरण, कहानी के प्रस्थान बिंदु, रचना का संदर्भ आदि। उपन्यास के रूपांतरण और मंचन को लेकर कहानी की भाँति यहाँ भी दो स्थितियाँ उत्पन्न हुईं – एक तो उपन्यास का नाट्य रूपांतरण और दूसरा उपन्यास का मंचीय रूपांतरण।

रंगमंच पर किसी भी प्रस्तुति की एक नियत समय सीमा होती है। कभी कोई कहानी 45 मिनट में भी बयान कर दी जाती है तो कभी वही कहानी 90 से 150 मिनट में भी बयान की जाती है। कभी–कभी कोई निर्देशक किसी पूर्णकालिक प्रस्तुति को संक्षिप्त कर 60 मिनट की समयावधि में ही खेल जाता है। ऐसे में वह संपादित दृश्यों अथवा संवादों के लुप्त हो जाने का भान नही होने देता। इस संपादन में भी उसके पास तर्क होता है। बिल्कुल इसी प्रकार एक वृहत उपन्यास के महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदुओं को लेकर रूपांतरणकर्ता उन दृश्यों का ही चयन करता है जो मुख्य कथा के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। यह प्रक्रिया अपने आप में कहानी की अपेक्षा जटिल है।

रंगमंच की सक्रियता के दौर में ऐसे कई पड़ाव दिखाई देते हैं जब हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के उपन्यासों के मंचन की जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए – मन्नू भंडारी ने स्वयं अपने उपन्यास– 'महाभोज' का रूपांतरण किया जिसमें उन्होंने उपन्यास की घटनाओं को दृश्य रूप दिया। यह महाभोज नाटक व्यवस्था, राजनीति और उसके दोगलेपन के बीच पिसते हुए आम आदमी की व्यथा को चित्रित करता है। उपन्यास में मन्नू भंडारी ने गाँव से शहर और शहर से गाँव तक की हलचलों और अमानवीय लड़ाई को विस्तार से लिखा है और इन्हीं संवेदनाओं को वे मंचीय रूप भी देने के लिए नाटक में उसे रूपांतरित करते हैं। मणिका मोहिनी द्वारा कृष्णबलदेव वैद के उपन्यास 'उसका बचपन' का रूपांतरण किया जाता है। वे स्वयं भी कथाकार हैं इसलिए उनके इस रूपांतरण में पारिवारिक–सामाजिक–मानसिक संघर्ष को बखूबी नाट्य दृश्यों मे पिरोया है। प्रथम दृश्य में ही दादी का अकेलापन, दादी और बीरू का प्यार, माँ का संकट और कटुता, माँ के प्रति सबका असंग भाव है। बीरू भी माँ को कभी भी कुछ भी कह देता है, गीली लकड़ियाँ, धुआँ, माँ के कष्ट को और भी प्रभावी बनाता है। इस नाट्य रूपांतरण में निर्देशकीय परिकल्पना का विस्तार, प्रयोग की व्यापक संभावनाएँ हैं, कार्यव्यापार पर भी रूपांतरणकर्ता की पकड़ बराबर है। मृणाल पांडेय द्वारा देवकीनंदन खत्री के उपन्यास 'काजर की कोठरी' का रूपांतरण भी अत्यंत रोचक है। इसमें अत्यंत प्राचीन कृति को, कथावस्तु को, घटनाकाल को तोड़कर देखने, पुनः अपने समय के बीच जोड़कर रखने के प्रयास की कठिन प्रक्रिया है।

उपन्यास के रूपांतरण के क्रम में कुछ ऐसे रूपांतरणकर्ता का नाम भी हैं जो मूलतः निर्देशक हैं और प्रस्तुति को केंद्र में रखकर उपन्यास का उन्होंने रूपांतरण किया है। मसलन – रंजीत कपूर ने कुछ उपन्यासों के रूपांतरण किए और उनकी सफल प्रस्तुतियाँ भी कीं। पं आनंद कुमार के 'बेगम का तकिया', चाणक्य सेन के 'मुख्यमंत्री', मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु–कुरु स्वाहा' आदि का रूपांतरण और अपने कथ्य के तीखेपन, मनोरंजन और सामयिक संदर्भों के कारण ये प्रस्तुतियाँ अत्यंत चर्चित भी रहीं। प्रेमचंद के कालजयी उपन्यास के दो रूपांतरण किए गए – पहला विष्णु प्रभाकर द्वारा 'होरी' नाम से और दूसरा रूपांतरण प्रतिभा अग्रवाल ने 'गोदान' शीर्षक से किया। 'गोदान', 'राग दरबारी', 'महाभोज' की तरह ही जगदीशचंद्र के उपन्यास पर आधारित 'कभी न छोड़ें खेत' का मंचन एम.के.रैना द्वारा किया गया।

देवेंद्रराज अंकुर ने जिस नई रंगमंच शैली का सूत्रपात किया, उसने उपन्यासों को सीधे मंचित करने की भी स्थितियाँ उत्पन्न कीं। इस शैली के तहत अभिनेताओं के दल ने एक रूपांतरणकर्ता की तरह उपन्यास को सीधे बिना किसी लेखक के मंचित किया। इस शैली के साथ उपन्यास की महत्वपूर्ण घटनाएँ सीधे–सीधे ज्यों का त्यों मंच पर पहुँचीं। ऐसे में उपन्यास के साथ रंगमंच ने न्याय किया। उपन्यास की विधागत संरचना

को सुरक्षित रखते हुए एक नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया, जहाँ उपन्यास पढ़ने का भी आनंद मिलता है और उसे मंचित होते हुए देखने का भी। इसी दृष्टि से अंकुर जी ने 'महाभोज', 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'काजर की कोठरी', 'अपना मोर्चा' जैसे उपन्यासों का भी मंचन किया। यह मंचीय रूपांतरण आलेख के रूपांतरण की प्रक्रिया से भिन्न था। इस मंचीय रूपांतरण में उन्होने इतिवृत्तात्मक अंशो व लेखकीय विवरणों, कार्यव्यापार की सूचना व परिवेश की जानकारी देने वाले अंशों को कहने के लिए कथावचक की युक्ति अपनाई थी।

जैसा कि हमें ज्ञात है कि कहानी किसी क्षण विशेष की घटना होती है जबकि उपन्यास पूरे मानव जीवन की व्याख्या करता हुआ दिखाई देता है। जहाँ रूपांतरणकर्ता कहानी को अपनी कल्पना व रचनात्मकता से विस्तार प्रदान करता है वहीं उपन्यास में वह विस्तृत कथावस्तु से नाट्य दृश्योपयोगी प्रसंगों को ग्रहण करता है। एक विस्तृत फलक से घटनाओं को ग्रहण कर उन्हें मंच शिल्प में ढालना और उन्हें रंगमंचीय शिल्प में पिरोना वास्तव में अत्यंत श्रमसाध्य कार्य है जो गहरी रचनात्मक क्षमता और रंगमंचीय दृष्टि की माँग करता है। इस अध्याय में हम इसी प्रक्रिया की चर्चा करेंगे। आइए, सबसे पहले उपन्यास के महत्वपूर्ण तत्वों की चर्चा करते हैं।

10.2 उपन्यास की संरचना

उपन्यास 'उप' और 'न्यास' से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ समीप और न्यास' का अर्थ है रचना। अर्थात उपन्यास वह है जिसमें मानव जीवन के किसी तत्व को पूर्ण विस्तार से एवं निकट से प्रस्तुत किया जाए। यह यह अंग्रेजी के novel शब्द का पर्याय है उपन्यास के माध्यम से लेखक मानवजीवन के विभिन्न पक्षों को पूरी संवेदनशीलता तथा निश्चित तारतम्य के साथ प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यास एक ऐसी साहित्य विधा है जिसे मानव जीवन का यथार्थ प्रतिबिंब कहा जा सकता है वस्तुतः उपन्यास में एक ऐसी विस्तृत कथा होती है जो अपने भीतर अन्य गौण कथाएँ समेटे रहती है अर्थात इसके मूल में एक कथा होती है तथा विभिन्न गौण कथाओं की सहायता से उसे पुष्ट किया जाता है इस कथा के भीतर समाज और व्यक्ति की विविध अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ, अनेक प्रकार के दृश्य और घटनाएँ और बहुत प्रकार के चरित्र हो सकते हैं, और यह कथा विभिन्न शैलियों में कही जा सकती है

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''उपन्यास आधुनिक युग की देन है। नई गद्य के प्रचार के साथ–साथ उपन्यास प्रचार हुआ है। आधुनिक उपन्यास केवल कथा मात्र नहीं है और पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं की भाँति कथा–सूत्र का बहाना लेकर उपमाओं और रूपकों, दीपकों और श्लेषों की छटा और सरस पदों में गुंफित पदावली की छटा दिखाने का कौशल भी नहीं है। यह आधुनिक वैक्तिकतावादी दृष्टिकोण का परिणाम है।''

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपन्यास मानव जीवन की एक विस्तृत कथा है उपन्यास की संरचना की यदि बात की जाए तो उपन्यास के कुछ मूल तत्व हैं जिनसे उपन्यास की निर्मित होती है। आइए, ूउपन्यास के तत्वों की चर्चा करते हैं। इनकी सहायता से आपको यह समझने में भी सहायता मिलेगी कि उपन्यास के अनुवाद अथवा रूपांतरण में भी किन–किन बिंदुओं का ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है।

10.2.1 उपन्यास के तत्व

कथावस्तु

किसी उपन्यास की मूल कथातत्व को कथावस्तु कहा जाता है। उपन्यास मानवजीवन के विभिन्न पक्षों का संवेदनात्मक चित्रण है। इस दृष्टि से उपन्यास का कथानक बहुत विस्तृत होता है तथा मूल कथा के साथ कुछ गौण कथाएँ भी चलती रहती हैं जो मूल कथा को पुष्ट करती है। उपन्यास में प्रयुक्त इन विभिन्न कक्षाओं में आंतरिक तारतम्यता का महत्व बहुत अधिक है। इसीलिए कथावस्तु का चुस्त होना बहुत आवश्यक है। कथानक के चुनाव का आधार इतिहास, पुराण, दैनंदिन जीवन आदि कुछ भी हो सकता है। यह पूर्णतः लेखक की क्षमता पर निर्भर करता है कि वे कथानक को इतनी खूबसूरती से आकार देते हैं। रोचकता, स्वाभाविकता तथा प्रवाह कथावस्तु के अनिवार्य गुण हैं।

चरित्र–चित्रण

उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है चरित्र–चत्रण। पात्र ही उपन्यास की वे कड़ी है जिन पर कथावस्तु निर्भर करती है। इसीलिए कथावस्तु के अनुरूप पात्रों का चयन आवश्यक है। इसके साथ ही कथावस्तु में प्रयुक्त परिवेश के अनुसार ही पात्रों की परिकल्पना, उनकी वेशभूषा, रहन–सहन, जीवनशैली, भाषा आदि का भी ध्यान रखे जाने की आवश्यकता है। उपन्यास की विकास यात्रा पर यदि ध्यान दिया जाए तो देखा जा सकता है कि उपन्यास ने घटनाप्रधान से लेकर चरित्र प्रधान, मनोविश्लेषणात्मक आदि विभिन्न ने पड़ावों को देखा है। इस दृष्टि से पात्रों का चयन तथा उनकी परिकल्पना में भी कथावस्तु के मूल स्वरूप को ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता है।

संवाद या कथोपकथन

उपन्यास के कथातत्व, पात्र तथा कथोपकथन में संतुलन बेहद आवश्यक है। संवादों की सहायता से कथावस्तु में जीवंतता आ जाती है तथा वह अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है साथ ही, मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में अथवा उपन्यास के विभिन्न हिस्सों में संवाद तथा कथोपकथन न केवल अधिक स्पष्टता प्रकट करते हैं अपितु उनसे नाटकीयता का भी संचार होता है। पात्रों की मनःस्थिति और उनकी भूमिका के अनुसार ही संवादों आदि में स्वाभाविकता होना आवश्यक है।

देशकाल एवं वातावरण

उपन्यास की विषयवस्तु में बदलाव आने के साथ–साथ उसके वातावरण में भी बदलाव देखा जा सकता है। प्रेमचंद्र के उपन्यासों की बात की जाए तो वे मूलतः ग्रामीण जीवन व शहरी जीवन के बीच में द्वंद के बीच बुना गया दिखाई देता है जिसमें घटनाओं की प्रधानता के चलते देशकाल एवं वातावरण मुखर हो जाते हैं। वही जैनेंद्र अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि के उपन्यास मनोविश्लेषणात्मक तथा व्यक्तिवादी अधिक होने के कारण मनुष्य के मनोवैज्ञानिक वातावरण की अधिक प्रमुखता है। इसी तरह प्रसाद के उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि देशकाल एवं वातावरण का चित्रण करते समय कथावस्तु की पृष्ठभूमि को केंद्र में रखा जाए ताकि वह स्वाभाविक प्रतीत हो।

उपन्यास के अन्य तत्वों की तरह ही उपन्यासकार को भाषा का भी ध्यान रखना होता है। कथावस्तु के अनुसार ही पात्रों, संवादों की योजना तथा उसी अनुसार भाषा व शैली का प्रयोग अपेक्षित है। यह विशेष रूप से दृष्टव्य है कि उपन्यास की भाषा दुरूह तथा जटिल न हो। लेकिन इसके साथ यह भी आवश्यक है कि वह अपने कथातत्व तथा शैली से मेल खाती हो। सरलता की तलाश में कथातत्व की मूल आत्मा से अन्याय ना हो। उदाहरणस्वरूप, यदि बात करें तो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर निर्मित उपन्यास की भाषा व शैली उसी के अनुसार होना अनिवार्य है। देशकाल, वातावरण, भाषा में अंतरंगता हो। ठीक इसी तरह, यदि अस्मितावादी साहित्य है जिसके अंतर्गत लेखक किसी ऐसे अनछुए सत्य को सामने ला रहे हैं तो यथानुकूल भाषिक प्रयोग में भी इसका ध्यान रखा जाए। संक्षेप में यदि कहा जाए तो उपन्यासकार से अपेक्षा की जाती है कि वे उपन्यास के कथानक और परिवेश के साथ न्याय करें।

शैली की दृष्टि से बात करें तो उपन्यास आत्मकथात्मक शैली, पत्र शैली, नाटकीय शैली, वर्णनात्मक आदि विभिन्न शैलियों में लिखे जाते हैं।

उद्देश्य

मानव जीवन के संपूर्ण चित्रण की दृष्टि से उपन्यास एक बेहद महत्वपूर्ण विधा है। ऐसे में उपन्यास का उद्देश्य विषयवस्तु के साथ न्याय तथा पाठक को प्रभावित करना है। अपने बदलते स्वरूप में उपन्यास नैतिक शिक्षा, मनोरंजन आदि सीमित उद्देश्यों से बाहर निकल एक ऐसी विधा के रूप में उभर रहा है जो मानव जीवन के अधिक निकट प्रतीत होती है साहित्य की एक सशक्त विधा होने के नाते उपन्यास आदि को समानांतर इतिहास के रूप में भी देखा जाता है। ऐसे में पाठक को कथ्य, भाषा व शिल्प– तीनों की दृष्टि से समृद्ध करना उपन्यास का उद्देश्य है।

10.3 उपन्यास में कथा

उपन्यास के रूपांतरण के संदर्भ में चर्चा करें इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि उपन्यास विधा क्या है व इसकी क्या विशिष्टता है? यह शब्द 'उपन्यास' अंग्रेजी के 'नॉवेल' के हिंदी अनुवाद के रूप में ग्रहण किया गया है। 'नॉवेल' का अभिप्राय नवीनता से है जबकि उपन्यास में 'समीप रखने' का अभिप्राय निहित है। स्पष्ट है कि 'उपन्यास' एक ऐसी विधा है जो मानव जीवन के अधिक समीप होता है। प्रेमचंद उपन्यास के संदर्भ में कहते हैं कि 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र–मात्र समझता हूँ–मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास का मूल तत्व है।' यह गद्य की ऐसी विधा है जिसमें वास्तविक जीवन का अनुकरण करने वाली घटनाओं और पात्रों से कथावस्तु का निर्माण होता है, इसमें शिल्प कौशल की विविधता होती है।

यथार्थ का सामीप्य गद्य साहित्य की विशेषता है। कोई भी पद्य रचना छंद व लय से बँधी होती है। यदि छंद नहीं है तब भी वह किसी न किसी रूप में लय से तो बँधी ही होती है। पद्य में दो अनिवार्यता दिखती है–शब्द की लय और अर्थ की लय। जबकि गद्य में इसका अभाव होता है। उपन्यास में इन अर्थ–लय की आवश्यकता नहीं होती। यह गद्य में बँधी होने के कारण जीवन की अनुकृति का आभास पैदा करती है।

गद्य में वर्णन और विश्लेषण करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। उपन्यास में इस क्षमता का अधिकता से प्रयोग किया जाता है। वर्णन (नरेशन), विवरण (डिस्क्रिप्शन) और

विश्लेषण (एनालिसिस)– इन तीनों गुणों की उपन्यास लेखन में आवश्यकता होती है। इसे प्रेमचंद के उपन्यासों मे देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, 'गोदान' के आरंभ में धनिया का यह **वर्णनात्मक अंश** देखिए –

तीन लड़के बचपन में ही मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा–दारू होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवां ही साल तो था, पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुआँ रंग संवला गया था, और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिंता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिले, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था, और दो–चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उक्त अंश में प्रेमचंद ने पात्र – धनिया के चरित्र का वर्णन प्रस्तुत किया है। उसका स्वभाव ऐसा क्यों है? उन तथ्यों को वे बहुत ही सटीक ढंग से वर्णित करते हैं। अब हम इसी उपन्यास के **विवरणात्मक अंश** को भी देखते हैं –

अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण कुछ तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नजर आती थी। आस–पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती थीं। उस उमस में भी यहाँ की हवा में कुछ ताजगी और ठंडक थी। होरी ने दो–तीन साँसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाए। दिन–भर तो लू लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे, पर ईश्वर भला करे राय साहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठायी जाएगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता, गायें जाऐं भाड़ में, हमें रुपये मिलते हैं, क्यों छोड़ें, पर राय साहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मंजिल प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

विश्लेषणात्मक अंश–

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव–ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक–एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाए, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती मे अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है, उससे, पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान,? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेकना उसने सीखा ही नही था।

उपन्यास में ऐसे व्यापकता की बहुलता होती है। इन अंशों से उपन्यास की लेखकीय दृष्टि और समाज के अवलोकन की क्षमता का पता चलता है। कोई भी उपन्यासकार अपने उपन्यास में केवल बाह्य परिवेश का ही वर्णन नहीं करता बल्कि चरित्र व उसकी मानसिकता, दार्शनिकता, आंतरिक मनोभाव और उनके कार्य–व्यापार का भी वर्णन करता है।

उपन्यास में एक कहानी होती है जो इसे कथात्मक विधा बनाती है। कहानी कहने की कला से उपन्यासकार भली–भाँति परिचित होता है। रोचक भाषा के प्रयोग से वह कहानी को कहने–सुनने की क्षमता प्रदान करता है। उपन्यास में किस्सागोई का भरसक प्रयोग किया जाता है। वास्तव में उपन्यास की रचना पढ़ने के लिए होती है न कि सुनने या फिर कहने के लिए। उपन्यास की कथा में कौतूहल, रहस्य और नाटकीयता के लिए उपन्यासकार किस्सागोई का इस्तेमाल करता है। उपन्यास रचना को बोझिल होने से बचाने और आकर्षक बनाने के लिए यह प्रयोग अत्यंत आवश्यक है। उपन्यास में मनोभावों की सूक्ष्मता का उद्घाटन इस तरह किया जाता है कि पाठकों मे उत्सुकता बनी रहती है। वह यह जानने की कोशिश करता है कि अमुक पात्र क्या करेगा? द्वंद्वात्मक भावों के वर्णन में उपन्यासकार किस्सागो की तरह पाठकों की उत्सुकता को तीव्र करता चलता है। सक्रिय और बेचैन पात्रों के द्वारा ही कथा की गति में प्राण फूँका जा सकता है।

कथा चाहे कितनी भी यथार्थपरक और रोचक क्यों न हो, बिना सोद्देश्य योजना के उपन्यास में उसका प्रयोग संभव नहीं। इसीलिए उपन्यासकार उपन्यास में उस कथा के निरूपण के लिए पूर्व योजना बनाता है। उपन्यास लेखन का क्रम एक विचार के साथ होता है। वह अपने विचारों को आकार देने के लिए कहानी के एक रूप की कल्पना करता है, पात्रों के बारे में सोचता है और देशकाल व परिस्थितियाँ तय करता है। 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद ने किसानों की स्थिति से उत्पन्न विचार को आकार देने के लिए एक कहानी की कल्पना की जिसमें होरी, धनिया, गोबर, भोला जैसे चरित्रों की रचना की और उस कथा को एक गाँव का संस्कार दिया। कहानी चाहे कितनी ही काल्पनिक क्यों न हो, उसका स्वाभाविक और विश्वसनीय लगना आवश्यक है। यह बिल्कुल वैसे ही है जैसे दर्शक रंगमंच पर अभिनेता को ही चरित्र के रूप में स्वीकार लेते हैं।

उपन्यास मानव जीवन के विविध रंगों व दृश्य–चित्रों से लैस होता है। जिस प्रकार एक पटकथा लेखक या फिर कोई नाटककार शब्दों के माध्यम से एक दृश्य को साकार रूप देने की परिकल्पना प्रस्तुत करता है उसी प्रकार उपन्यासकार भी शब्दों से अनेक दृश्यों को रचता है जो पात्रों के मनोभावों से लैस होते हैं। यही कारण है कि उपन्यास के इस गुण ने रंगमंच और सिनेमा को अपनी ओर आकृष्ट किया है। गोदान में जब होरी अपनी अंतिम साँसें गिन रहा होता है तब उसके स्मृति पटल पर अनेक चित्र उभरने लगते हैं। प्रेमचंद ने इस दृश्य को शब्दों से जीवंत किया है, वे इस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

> उस मजदूर ने कहा – कैसा जी है होरी भइया?
>
> होरी के सिर में चक्कर आ रहा था। बोला – कुछ नहीं, अच्छा हूँ।
>
> यह कहते–कहते उसे फिर कै हुई और हाँथ–पाँव ठंडे होने लगे। वह घबड़ाया। यह सिर में चक्कर क्यों आ रहा है? आँखों के सामने जैसे अंधेरा छाया जाता है। उसकी आँखें बंद हो गयीं और जीवन की सारी स्मृतियाँ सजीव हो–होकर हृदय–पट पर आने लगीं, लेकिन बेक्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्न–चित्रों की भाँति बेमेल, विकृत और असंबद्ध। वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियाँ खेलता था और माँ की गोद मे सोता था। फिर देखा, जैसे गोबर आया है और उसके पैरों पर गिर रहा है। फिर दृश्य बदला, धनिया दुलहिन बनी हुई, लाल चुँदरी पहने उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिल्कुल कामधेनु–सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गई और...

उसी मजदूर ने फिर पुकारा – दोपहरी ढल गई होरी, चलो झौवा उठाओ।

होरी कुछ न बोला। उसके प्राण तो न जाने किस–किस लोक में उड़ रहे थे। उसकी देह जल रही थी, हाथ–पाँव ठंडे हो रहे थे। लू लग गई थी।

इस दृश्य को सिनेमा और रंगमंच पर बड़े ही प्रभावी ढंग से किया गया। विष्णु प्रभाकर ने इस उपन्यास 'गोदान' के रूपांतरण 'होरी' में इस दृश्य को कुछ इस तरह रूपांतरित किया –

(तभी धीरे–धीरे प्रकाश उभरने लगता है, उद्घोषक का स्वर मौन हो जाता है। मंच पर होरी लेटा हुआ है। दोपहर की घंटी बजती है। कई मजदूर उधर आते हैं और होरी को देखते ही उसके पास पहुँचते हैं।)

मजदूर : कैसा जी है होरी भइया?

होरी : कुछ नहीं, अच्छा हूँ।

मज़दूर : खाली पेट पानी पी लिया शायद इस लू में काम करते हो फिर कुछ खाते नहीं, पानी भी नुकसान कर जाएगा।

होरी : नुकसान। अब जी के करना भी क्या है। बस गाय...तुम जाओ भइया....

(मज़दूर चला जाता है। दो क्षण सन्नाटा गहराता है फिर एकाएक होरी बड़बडाने लगता है।)

होरी : माँ...गोबर...धनिया...धनिया....गाय आ गई, मंगल को दूध पिला दे....माँ.... माँ....मैं तेरी गोद में सोउंगा....माँ...., देख पटेसरी ने मेरी गुल्ली छीन ली, माँ

(कुछ क्षण चुप हो जाता है। फिर बड़बड़ाता है। मजूर काम पर जाते हैं। एक मजूर होरी की ओर आता है)

मज़दूर : दोपहर ढल गई होरी। चलो झौवा उठाओ...होरी...(पास जाता है, देखता है) कैसा जी है? (सिर पर हाथ रखता है) अरे इसकी तो देह जल रही है। हाँथ–पाँव ठंडे हो रहे हैं। लू लग गई है। (एकदम बाहर जाता है) अरे कोई है। होरी के घर जाना। लू लग गई है इन्हें।

(होरी पहले की तरह बड़बड़ाता है।)

होरी : गोबर, गोबर रुपए हो गए। गाय आ गई, मंगल को दूध पिला दो...धनिया तूने लाल चुन्नी पहनी है। दुल्हन बनी है। धनिया...गाय कामधेनु है, देवी!...

(तभी सहसा धनिया दौड़ी आती है। होरी को छूती है और पागल–सी देखती है। काँपती है।)

इस प्रकार विष्णु प्रभाकर ने गोदान के उपर्युक्त दृश्य को रंगमंच के लिए रूपांतरित किया है। चूँकि रंगमंच की अपनी कुछ सीमाएँ है इसलिए विष्णु प्रभाकर ने संवादों के माध्यम से होरी के मन में उठने वाली स्मृतियों को संवादों के माध्यम से दिखाया है।

सिनेमा मे फ्लैशबैक युक्ति के माध्यम से उन स्मृतियों को अधिक आसानी से दिखाया गया है। आपने देखा कि प्रेमचंद रचित गोदाम के केवल एक हिस्से को लेखक विष्णु प्रभाकर ने होरी नाटय की रचना की। कथा के छोटे से अंश और उस पर लिखित पटकथा के अध्ययन से आपको अनुमान हो गया होगा कि किस प्रकार एक कथा को नाटक हेतु परिवर्तित किया जाता है। कथा, कहानी अथवा उपन्यास में जहाँ कई स्थानों पर संकेतात्मक शैली में बात कही जाती है, वही नाटक आदि विभिन्न दृश्यविधाओं के लिए पटकथा लेखन करते समय उस अंश को विस्तार दिया जाता है। इस विस्तार में कथा के देशकाल, परिवेश, पात्रों की मनः स्थिति और संवादों आदि की कल्पना की जाती है। पटकथा लेखन में इन तत्वों के समायोजन से वह दृश्य अधिक जीवंत और प्रभावशाली हो जाता है।

10.4 उपन्यास के रूपांतरण की प्रक्रिया

नाट्य रूपांतरण एक नवीन सृजन प्रक्रिया है। इसमें किसी मौलिक रचना को पुनः सृजित किया जाता है। संवादों में किसी रचना को ढाल देना ही नाट्य रूपांतरण नहीं है बल्कि इससे आगे उस मौलिक रचना में उपस्थित दूरगामी संभावनाओं, साहित्य में कला के संबंध सूत्र की तलाश और उसका कला में रूपांतरण तथा नए सौंदर्यबोध के साथ उस रचना को एक वृहद जन समुदाय तक संप्रेषित करना है। इस प्रक्रिया में लिखे गए शब्दों के दृश्यात्मक लय, व्यंजना, टोन और उसकी छवियों को एक आकार दिया जाता है। जब कोई रूपांतरकार या फिर रंग निर्देशक किसी रचना को रूपांतरित करते हैं तो उसका एक नया और प्रायोगिक स्वरूप दिखाई देता है। यह आवश्यक नहीं कि यह प्रयोग सफल ही हो लेकिन इतना अवश्य है कि वह पाठ्य साहित्य साक्षात्कर का विषय अवश्य अवश्य बन जाती है। इससे दर्शक उस मूल रचना को पढ़ने के लिए प्रेरित अवश्य होता है। उपन्यास के विस्तृत पटल से विविध संदर्भ, पात्र, घटनाएँ, स्थितियों में से एक 'संश्लिष्ट नाटक' की रचना करना वास्तव में एक रोमाँचकारी कार्य है।

उपन्यास एक व्यापक रचना है। इसे पूरा पढ़ना एक बैठकी में संभव नहीं। इस पाठ प्रक्रिया में कई घंटे, दिन या फिर महीनों लग सकते हैं। आज के इस व्यस्त जीवन में किसी वृहद पाठ को पढ़ना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। साहित्य प्रेमी व नियमित पाठकों के लिए यह कार्य आसान हो सकता है किंतु आम जन मानस के लिए यह थोड़ा कठिन है। इस वजह से उपन्यास का पाठक वर्ग सीमित है। उपन्यास का पटल विस्तृत है क्योंकि यह मानव जीवन के प्रत्येक सूक्ष्म क्षणों का विस्तृत वर्णन करता है। कई प्रसंगों और घटनाओं से होकर उपन्यास की कथा गुजरती है। यह ठीक 'महाकाव्यों' की तरह विविध दृश्यों और वर्णनात्मक अंशों से भरा हुआ होता है। यह विधा व्यापक है किंतु इसके पाठक सीमित, वहीं दूसरी ओर रंगमंच पर नाटक समय सीमा में बँधा होता है किंतु इसका दर्शक व्यापक होता है। ऐसे विस्तृत पटल से नाटक को निकालकर रंगमंच पर लाने का कार्य कई रूपांतरकारों व निर्देशकों ने किया है।

जब कोई निर्देशक या रूपांतरकार किसी उपन्यास को रंगमंचीय रूप देने की प्रक्रिया आरंभ करता है तो इसके पूर्व वह उस उपन्यास को पढ़ता है। उपन्यास की कथा, उसकी शैली उसे प्रभावित करती है। इसी प्रभाव के फलस्वरूप वह उस उपन्यास को मंच प्रदान करने का मन बनाता है। उपन्यास को रंगमंच के दायरे में समेटने की वह कोशिश करता है। रंगमंच के उपकरण – अभिनेता, निर्देशक, विन्यासकर्ता, सेट, लाइट, मंच भूगोल, दृश्य योजना आदि के द्वारा वह उस कथा को कहने की कोशिश करता है। जब उपन्यास लिखा जाता है तब उपन्यासकर्ता रंगमंच के विषय में सोचता भी नहीं किंतु जब उस उपन्यास को नाटक में ढाला जाता है तब यह बहुत ही जरूरी होता है

कि रूपांतरणकर्ता, उपन्यास व रंगमंच दोनों के विषय में सोचे और उस मिलन बिंदु की तलाश करे जहाँ दोनों एक साथ हों। बहरहाल, उपन्यास लिखने, पढ़ने या फिर सुनने के बाद उसे रंगमंच पर दिखाने का जो विचार रूपांतरण कर्ता के दिमाग में कौंधा था उसे आगे बढ़ाने का कार्य आरंभ होता है।

कभी–कभी किसी उपन्यास को रूपांतरित करने के लिए कोई नवीन कल्पना नहीं की जाती बल्कि उपन्यास के विवरणात्मक अंशो को छोड़कर या फिर आवश्यकतानुसार उन्हें संवादो में ढाल कर प्रस्तुत कर दिया जाता है। इस दृष्टि का प्रयोग हम मन्नू भंडारी के नाटक 'महाभोज' में देख सकते हैं जो उन्हीं के मूल उपन्यास 'महाभोज' का उन्हीं के द्वारा किया गया रूपांतरण है। इसमें वे नाट्यशिल्प की दृष्टि से कोई नई परिकल्पना नहीं करतीं। इसमें वे उपन्यास के विवरणात्मक अंशों को छोड़ देती हैं या फिर उन्हें संवादों में ढाल देती हैं।

कभी–कभी रूपांतरणकर्ता की पकड़ उपन्यास के घटना क्रम पर इतनी अच्छी होती है कि रूपांतरण में सफलतापूर्वक एक पूर्णता का प्रभाव उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए, मणिका मोहन ने कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'उसका बचपन' को कुछ इसी तरह से रूपांतरित किया है। इसमें निम्नवर्ग के यथार्थ और विडंबनाओं को मणिका मोहन ने बखूबी पकड़ा है। इस रूपांतरण में उनका सभी चरित्रों के आंतरिक मनोभावों के साथ गहरा तादात्म्य हुआ है। रूपांतरण में दृश्य बंध भी अत्यंत प्रभावी रूप से निर्मित किया गया। परस्पर विरोधी परिस्थितियों, विरोधी प्रवृत्तियों के पात्रों और विषमताओ से कथानक में एक तनाव की उत्पत्ति हुई जो कहानी को सहजता और गति प्रदान करती है। इस रूपांतरण में रूपांतरणकर्ता ने निर्देशक की परिकल्पना को स्थान दिया है, इसमें प्रयोगों की अपार संभावनाओं और अभिनेताओं के लिए कार्यव्यापार पर बराबर पकड़ है। संवादों में रोजमर्रा की अभिव्यक्ति है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूपांतरणकर्ता को उपन्यास के विविध घटनाक्रम के अंतर्भूत भावों से अपना तादात्म्य स्थापित करते हुए रूपांतरण की प्रक्रिया को संपन्न करना चाहिए।

उपन्यास रूपांतरण प्रक्रिया में रूपांतरणकर्ता को लंबे व वर्णनात्मक अंशों को सूक्ष्म और सांकेतिक रूप में व्यक्त करने का प्रयास करे। यदि कहीं, किसी बिंदु पर उपन्यास कमजोर है तो रूपांतरणकर्ता को उसे मजबूत बनाने का यत्न करना चाहिए। यदि उपन्यास में किन्हीं स्थितियों, संकेतों, घटनाओं का बिखराव है तो उसे नाट्य रूप में सूत्रबद्धता देनी चाहिए ताकि दर्शकों को कथावस्तु आसानी से समझ आ सके। रूपांतरण ाकर्ता को अतिरिक्त विवरणों का त्याग कर मुख्य केंद्रीय बिंदुओं को ध्यान में रखकर रूपांतरण करना चाहिए। कथा सूत्रों को पकड़ना, अतिरिक्त विवरण को छोड़ना, नाटकीय द्वंद्व को चरम तक ले जाने वाले आवश्यक प्रसंग को समझना, कार्यव्यापार की तीव्रता बनाए रखना और नाट्य रूप की आंतरिक रेखा को भंग न होने देना ये कुछ बिंदु अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

हिंदी के प्रसिद्ध कथा सम्राट प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' को लेकर कई रूपांतरण चर्चित हुए। इस महाकाव्यात्मक उपन्यास का एक नाट्य रूपांतरण विष्णु प्रभाकर ने भी 'होरी' के नाम से किया था जो रंगमंच की दृष्टि से बहुत सुगठित नही था किंतु फिर भी इसके कई मंचन हुए और इसके बाद ''गोदान' के अन्य कई रूपांतरणों के मंचन की श्रृंखला–सी शुरू हो गई। विष्णु प्रभाकर के रूपांतरण पर चर्चा करने के पूर्व गोदान के

1

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी–पानी दे कर अपनी स्त्री धनिया से कहा – गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। जरा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी। बोली– अरे, कुछ रस–पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है?

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़ कर कहा– तुझे रस–पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान–पूजा करने लगेंगे, तो घंटों बैठे बीत जाएगा।

'इसी से तो कहती हूँ, कुछ जलपान कर लो और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा! अभी तो परसों गए थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते–जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरे के पाँवों–तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।'

धनिया इतनी व्यवहार–कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने जमींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ। यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर–ब्योंत करो, कितना ही पेट–तन काटो, चाहे एक–एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो, मगर लगान का बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी, और इस विषय पर स्त्री–पुरुष में आए दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः संतानों में अब केवल तीन जिंदा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का, और दो लड़कियाँ सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा–दवाई होती तो वे बच जाते, पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो थाय पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुंदर गेहुँआँ रंग सँवला गया था, और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिंता ही के कारण तो। कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था, और दो–चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त हो कर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ ला कर सामने पटक दिए।

होरी ने उसकी ओर आँखें तरेर कर कहा – क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों

पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली–सलहज नहीं बैठी है, जिसे जा कर दिखाऊँ।

होरी के गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा – ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली–सलहजें तुम्हें देख कर रीझ जाएँगी।

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा – तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

जा कर सीसे में मुँह देखो। तुम–जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध–घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दसा देख–देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में झुलस गई। लकड़ी सँभलता हुआ बोला– साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया, इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया– अच्छा रहने दो, मत अशुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी कंधों पर लाठी रख कर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा–भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कंपन–सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय–दान दे रही थी। उसके अंतःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह–सा निकल कर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका दे कर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना–शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है?

होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देख कर उसने मन में कहा – भगवान कहीं गौं से बरखा कर दे और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देसी गाएँ तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार–पाँच सेर दूध होगा? गोबर दूध के लिए तरस–तरस रह जाता है। इस उमिर में न खाया–पिया, तो फिर कब खाएगा? साल–भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाए। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोंई न होगी। फिर गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे–सबेरे गऊ के दर्शन हो जाएँ तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह सुभ दिन आएगा!

हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक

के सूद से चौन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हें–से हृदय में कैसे समातीं !

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकल कर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत–प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गरमी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देख कर राम–राम करते और सम्मान–भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे, पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था? उसके अंदर बैठी हुई सम्मान–लालसा ऐसा आदर पा कर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते–जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं उसे कौन पूछता– पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन–तीन, चार–चार हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़ कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नजर आती थी। आस–पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती थीं। उस उमस में भी यहाँ की हवा में कुछ ताजगी और ठंडक थी। होरी ने दो–तीन साँसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाए। दिन–भर तो लू–लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे, पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जाएगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता गाएँ जाएँ भाड़ में, हमें रुपए मिलते हैं, क्यों छोड़ें, पर रायसाहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

यह गोदान का आरंभिक मूल पाठ है। इस का रूपांतरण विष्णु प्रभाकर ने कुछ इस तरह किया है–

अंक– एक

(रंगमंच पर पर्दा उठता है, वह उठे उससे पूर्व पृष्ठभूमि में उद्घोषक का स्वर गूँजता है।)

उद्घोषक– यह नाटक जो आपके सामने प्रस्तुत किया जा रहा है, हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' के नायक 'होरी' की कहानी है। मूल रूप से यह नाटक नहीं है बल्कि उपन्यास का नाट्य–रूपांतरण है।

'होरी' एक किसान है, उसके बहाने उपन्यासकार ने अभावग्रस्त भारतीय किसान की जीवनगाथा का मार्मिक चित्रण किया है। उसकी आशा–निराशा, सरलता–कुटिलता, प्रेम–घृणा, गुण–दोष सबको स्वर दिया है। यह कहानी वैसे तो बनारस के आसपास के गाँव की कहानी है लेकिन किसान बनारस का हो या भारत के किसी अन्य प्रदेश का, उसकी मूलभूत भावनाएँ व समस्याएँ एक ही हैं। इसलिए 'होरी' अपनी संपूर्ण दुर्बलताओं और विशेषताओं के साथ भारत के किसान का प्रतिनिधि है। वह भारतीय किसान है।

(यह स्वर मिटते न मिटते पर्दा उठने लगता है। पूरा उठ जाने के बाद पूर्वी उत्तर–प्रदेश के गाँव का दृश्य दिखाई देता है। टूटे–फूटे घर, नालियाँ, दाएँ–बाएँ पगडंडियाँ। ऐसे ही एक कच्चे घर का दृश्य मंच के बीच में दिखाई देता है। उसी घर के चबूतरे पर होरी की पत्नी धनिया चक्की पीसती नज़र आती है। उम्र अधिक नही है, लेकिन देखने में बुढ़िया लगती है। बाल पक गए हैं, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं। रंग भी साँवला पड़ गया है, आँखों से भी कम दिखाई देता है। चबूतरे के नीचे

होरी ज़ोर–ज़ोर से कुल्ला कर रहा है। देखने मे वह भी बूढ़ा लगता है। गहरा साँवला रंग, पिचके गाल, सूखा बदन)

धनिया : ज़रा धीरे–धीरे, दाँत बाहर निकल आएंगे।

होरी :तो क्या तू समझती है कि मैं बूढ़ा हो गया! अभी चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

धनिया : जाकर सीसे में मुंह देखो। तुम जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते । दूध–घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नही, पाठे होंगे! तुम्हारी दशा देख–देखकर तो मैं और सूखी जाती हूँ कि भगवान, यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार भीख माँगेंगे?

होरी : (सहसा शून्य में ताककर) नहीं धनिया, सूखने की ज़रूरत नहीं। साठे तक पहुँचने की नौबत ही न आने पावेगी। इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया : अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो! तुमसे तो कोई अच्छी बात भी कहे तो लगते हो कोसने।

(अंदर चली जाती है)

होरी : मंच के दूसरी ओर जाकर कैसी अच्छी ऊख हुई है। भगवान कहीं गौंसे बरखा कर दे और डांडी भी सुभीते से रहे तो एक गाय जरूर लूँगा। और पछाई लूँगा। देशी तो न दूध दे, न उसके बछवे ही किसी काम के। कुछ नही तो चार–पाँच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस–तरस कर रह जाता है। साल भर दूध पी ले तो देखने लायक हो जाए। फिर गऊ से ही तो द्वार की शोभा है (गायों के रंभाने व घंटी बजने का स्वर सुनाई देता है। होरी चौंककर उधर देखता है।) गाय...अहा भेला आ रहा है। वह...वह गाय कैसी अच्छी है। अगर भोला यह गाय मुझे दे दे तो क्या कहने!

इस अंश मे विष्णु प्रभाकर के रूपांतरण को समझा जा सकता है। अपनी कल्पना के सहारे उन्होंने मंच पर जो सेट की कल्पना की है वह उपन्यास के वर्णन में नहीं मिलता, साथ ही कई अंशों को छोड़ते हुए उन्होंने केवल कुछ ही संवादों को जगह दी है। यदि उपन्यास के अंश को पढ़कर इस रूपांतरण को देखें तो कई डिटेल्स हमें छूटते हुए नज़र आएँगे। पूरे नाटक में हमें इस संयोजन का अभाव सा दिखता है। लेकिन फिर भी रूपांतरण की प्रक्रिया व रूपांतरण संरचना को इस उदाहरण से समझा जा सकता है।

10.5 सारांश

इसमें कोई संदेह नहीं कि रंगमंच के माध्यम से उपन्यास भिन्न–भिन्न आयु व वर्ग के दर्शक समुदाय तक पहुँचता रहा है। कई बार ऐसा हुआ है कि बहुत से दर्शक उस

रचना से परिचित ही नहीं थे लेकिन मंचन देखने के पश्चात उनका रुझान उस रचना की ओर बढ़ा है और उन्होंने उस उपन्यास को खोज कर पढ़ा है। इससे साहित्य की उस विधा की माँग भी बढ़ी। परिणामस्वरूप उपन्यास बिके और चर्चा के केंद्र बने रहे।

वास्तव में उपन्यास पाठकों को एक विस्तृत जीवन के करीब दर्शक की तरह ला खड़ा करता है, जो विशद है और कई चरित्रों, उनके प्रसंगों और जीवन के विविध रंगों से भरा पड़ा है। उनमें दृश्य है, पात्र हैं और उनके बीच संवाद है, नाट्य क्रियाएँ हैं। रंगमंच को इन्हीं सब की तो जरूरत है। बस आवश्यकता है एक रंगमंचीय उद्देश्य की जो उन्हें रंगमंच पर ले आए और इसी उद्देश्य के साथ लेखकों व निर्देशकों ने उस मिलन बिंदु की तलाश की जहाँ साहित्य और प्रदर्शनकारी कला – रंगमंच एक हुईं।

उपन्यास की रूपांतरण प्रक्रिया ठीक उसी तरह है जैसे विशाल समुद्र से मोतियों को इकट्ठा करना और फिर उसकी एक माला तैयार करना। ऐसा इसलिए क्योंकि उपन्यास में दृश्यों और घटनाओं की भरमार होती है। रंगमंच के अनुरूप उन दृश्यों को चुनना और फिर उन्हें एक आकार देना सामान्य नही बल्कि एक चुनौती भरा कार्य है।

10.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. उपन्यास क्या है तथा उपन्यास की क्या प्रकृति है?
2. उपन्यास का रूपांतरण एक सोद्देश्य प्रक्रिया कैसे है?
3. क्या पूरे उपन्यास का मंचीय रूपांतरण किया जा सकता है? विचार कीजिए।
4. उपन्यास का रूपांतरण करते समय किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए?
5. उपन्यास की कथा संरचना क्या है?

10.7 उपयोगी पुस्तकें

- आनंद, महेश, कहानी का रंगमंच, : राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–1997।
- पत्रिका– छायानट : अंक–109– जनवरी–मार्च–2005, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी के आलेख '' किस्सागोई एक दूसरे किस्म का चैलेंज है।''
- रस्तोगी, गिरीश, बीसवीं शताब्दी का हिंदी नाटक और रंगमंच, : भारतीय ज्ञानपीठ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY